पारस परस

वर्ष-10 अंक-4 अक्टूबर-दिसम्बर, 2020, रजि. नं.:यू.पी. एच.आई.एन./2011/39939 पृष्ठ -40 मूल्य- 25

सृजन स्मरण

हरिवंशराय बच्चन

जन्म- 27 नवम्बर 1907 निधन- 18 जनवरी 2003

देवलोक से मिट्टी लाकर
मैं मनुष्य की मूर्ति बनाता।
रचता मुख, जिससे निकली हो
वेद–उपनिषद की वर वाणी,
काव्य–माधुरी, राग–रागिनी,
जग–जीवन के हित कल्याणी।
हिंस्र जन्तु के दाढ़ युक्त
जबड़े–सा, पर वह मुख बन जाता।
देवलोक से मिट्टी लाकर
मैं मनुष्य की मूर्ति बनाता।

वर्ष : 10 अंक : 4 अक्टूबर-दिसम्बर, 2020 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की विविध विधाओं
की त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक
डॉ. शम्भुनाथ

प्रधान संपादक
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

संपादक
डॉ. अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
मेट्रो प्रिंटर्स
लखनऊ

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डॉ. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ उ.प्र. से मुद्रित तथा ए-1/15 रश्मि, खण्ड, शारदा नगर योजना, लखनऊ उ.प्र. से प्रकाशित।
सम्पादकः डॉ. अनिल कुमार

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
श्रद्धा सुमन		
क्या भूल गये? जो याद करें	डॉ. अनिल कुमार	4
कालजयी		
निशा पुकारती रही रूका न चाँद एक पल	पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'	5
आओ फिर से दिया जलायें	अटल विहारी बाजपेयी	6
करुण पुकार	हरिवंशराय बच्चन	7
एक भावना	हरिनारायण व्यास	8
समय के सारथी		
जोड़ियाँ तो बनाता है, रब	गोपाल कृष्ण शर्मा मृदुल	9
मैं प्रगति का गीत गाता जा रहा हूँ	केदारनाथ पाण्डेय	10
आँगन से होकर आया है	कृष्ण मिश्र	11
ठहरो साथी	ओम नीरव	12
गीतों के गाँव	ओम निश्चल	13
जरा मुस्कुरा तो दे	अशोक चक्रधर	14
हर लेती हैं बेटियाँ	अशोक अंजुम	15
कलरव		
तितली रानी आना री	अभिरंजन कुमार	16
छोटी चिड़िया, बड़ी चिड़िया	सुरेन्द्र झा	17
कितने दिन हुए देखे	गुलाब सिंह	18
खटपट-खटपट	गोपीचन्द श्रीनागर	19
नारी स्वर		
कर्मयोग	कविता मालवीय	20
सपने बीजते हैं	भावना सक्सेना	21
बड़ी दुश्वार हैं राहे तो तू दे साथ चलते हैं	पूजा श्रीवास्तव	22
मूक कर्मयोगी	दामिनी	23
बेटी के लिए	ज्योति चावला	24
व्यर्थ नहीं हूँ मैं	कविता किरण	25
शब्द नहीं कह पाते	ऋतु पल्लवी	26
व्यथा	उषारानी राव	27
मैं गाँव चली	अलका वर्मा	28
बिटिया बड़ी हो गई	अंजना बख्शी	29
नवोदित रचनाकार		
उम्मीद	अनिल त्रिपाठी	30
बाजार	घनश्याम कुमार	31
डरा हुआ आदमी और कविता	आलोक कुमार मिश्रा	32
आदमी से आदमी तक	कौशल किशोर	33
पूछते है लोग मुझसे गीत यह अवसाद के क्यों	गौरव शुक्ल	34
रिश्तों के झुन-झुने	कमलेश कमल	35
मेरी आँख रात भर रोई	चेतन दुबे अनिल	36
उनके हाथों को थाम भूल गए	उत्कर्ष अग्निहोत्री	37
स्नेह	अजय कृष्ण	38
माँ की तस्वीर	अखिलेश्वर पाण्डेय	39
आँसुओं के आचमन का	अभिषेक	40

पूर्वाग्रह हमें सत्य से दूर ले जाता है

श्रीमद्देवीभागवत पुराण में ऋषिद्वय विश्वामित्र व वशिष्ठ के मध्य इन्द्र की सभा में राजा हरिश्चन्द्र के सम्बन्ध में हुए विवाद का एक प्रसंग वर्णित है। यह विवाद वशिष्ठ के इस कथन पर प्रारम्भ हुआ जब उन्होंने कहा कि राजा हरिश्चन्द्र के समान सत्यवादी, दानवीर और परमधर्मात्मा न पहले हुए हैं और न भविष्य में होंगे। विश्वामित्र ने इसका प्रतिवाद करते हुए क्रोधित होकर कहा कि यदि मैं आपके उस प्रशंसित राजा (हरिश्चन्द्र) को मिथ्यावादी, दान न देने वाला तथा महादुष्ट न प्रमाणित कर दूँ तो मेरे सभी पुण्य नष्ट हो जांय अथवा यदि आप (वशिष्ठ) उसे सत्यवादी, दानवीर एवं अत्यन्त सज्जन न प्रमाणित कर सकें, तो आपके सभी पुण्य नष्ट हो जांय–

"अहं चेत्तं नृपं सद्यो न करोम्यतिसंस्तुतम्।
असत्यवादिनं काममदातारं महाखलम्।।
आजन्मसञ्चितं सर्वं पुण्यं मम विनश्यतु।
अन्यथा त्वत्कृतं सर्वं पुण्यं त्विति पणावहे।।"

(श्रीमद्देवीभागवत पुराण, सप्तम स्कन्ध, अध्याय 18, श्लोक 57 एवं 58)

उक्त प्रसंग में उल्लेखनीय यह है कि जहाँ वशिष्ठ को राजा हरिश्चन्द्र की सत्यवादिता, दानवीरता एवं सज्जनता के प्रति अटूट विश्वास है, वहीं विश्वामित्र यह जानते हुए भी कि राजा हरिश्चन्द्र सत्यवादी, दानवीर एवं सज्जन हैं फिर भी वह राजा हरिश्चन्द्र के चरित्र को उक्त गुणों के विपरीत प्रमाणित करने के लिए शर्त लगा रहे हैं। निश्चित रूप से वशिष्ठ एवं विश्वामित्र दोनों ही अत्यन्त ज्ञानी, सिद्ध, त्रिकालदर्शी ऋषि हैं किन्तु अपने पूर्वाग्रह के कारण विश्वामित्र की राजा हरिश्चन्द्र के प्रति धारणा सही नहीं कही जा सकती। एक श्रेष्ठ ऋषि का यह कार्य–व्यवहार आश्चर्यचकित करने वाला है।

इसीलिए हमारी आर्ष परम्परा में सभी को समभाव, समान मन व चित्त आदि से युक्त करने का उल्लेख है। ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं में यही वर्णित किया गया है :–

समानो मंत्रः समितिःसमानी समानं मनः सह चित्तमेशाम।
समानं मन्त्रमधि मन्त्रये वः समानेन वो हविशा जुहोनि।।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।

(ऋग्वेद 10/191/3–4)

सब मनुष्यों के विचार समान हों। इनकी समिति और सभा समान हो, इनका मन समान हो और चित्त एक साथ समान उद्देश्य वाला हो। हे मनुष्यों ! मैं परमेश्वर तुम्हें समान विचारों

वाला करता हूँ और समान खान–पान और यज्ञ भावना से युक्त करता हूँ। सब मानवों के संकल्प, निश्चय, प्रयत्न एवं व्यवहार समान–समभाव वाले, सरल–कापट्यादिदोषरहित, निर्मल रहें एवं सब मानवों के हृदय भी समान–निर्द्वन्द्व, हर्ष–शोक रहित समभाव वाले रहें तथा आप सब मानवों का मन भी समान–सुशील, एक प्रकार के ही सद्भाव वाला रहे। जिस प्रकार सबका अच्छा, सहभाव–धर्मार्थादि का समुच्चय सम्पादित हो, उस प्रकार आपकी आकृति–हृदय एवं मन हों।

किसी भी समाज की समुचित प्रगति व विकास तभी सम्भव है जब समाज के सभी व्यक्ति पूर्वाग्रहरहित होकर सकारात्मक दृष्टि रखें। वे आपस में साहचर्य, सौमनस्य की भावना रखते हुए सहजीविता के सिद्धान्त का मन–वचन–कर्म से पालन करें। परस्पर सहयोग एवं सहभागिता सामाजिक व्यवस्था के सुचारु संचालन की दृष्टि से परमावश्यक है। किसी की अनुचित आलोचना या किसी पर अमर्यादित टिप्पणी अथवा किसी की निंदा या भर्त्सना करना अथवा उसका समर्थन करना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता है।

प्रस्तुत अंक आपके पास पहुँच रहा है जिसके लिए हमें अपार प्रसन्नता है। इस अंक के समस्त रचनाकारों, उनके परिवार एवं प्रकाशक आदि के प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हुए भविष्य में भी यथावत् सहयोग की आशा करते हैं।

शुभ कामनाओं के साथ,

डा0 अनिल कुमार

क्या भूल गये? जो याद करें

- डॉ0 अनिल कुमार पाठक

बाबूजी को 'याद करें',
क्या भूल गये? जो 'याद करें'।

हर पल, बीत गया जो कल–
आज तथा आगामी कल।
भूले नहीं कभी जब उनको,
तब कैसा? यह 'याद करें'।
बाबूजी को 'याद करें'।
क्या भूल गये? जो 'याद करें'।

रक्त शिराओं में है, उनका,
श्वास–सूत्र प्रत्येक, उन्हीं का।
सब केवल औ' केवल उनका,
तक क्यूँ? कलरव–नाद करें।
बाबूजी को 'याद करें'।
क्या भूल गये? जो 'याद करें'।

जो कुछ भी है, इस तन–मन में,
बाहर–भीतर, घर–आँगन में।
उनसे ही संबद्ध सभी कुछ,
तब किससे फरियाद करें?
बाबूजी को 'याद करें'।
क्या भूल गये? जो 'याद करें'।

❖❖❖

निशा पुकारती रही, रुका न चाँद एक पल

- पं0 पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

निशा पुकारती रही, रुका न चाँद एक पल।

चला गया प्रवाह सा,
छोड़ एक आह सा,
समीर काँप सा उठा,
भर रहा उसाँस सा।

देखता ही रह गया, तारकों का श्वेत–दल।
निशा पुकारती रही, रुका न चाँद एक पल।।

रात साथ जो रहा,
प्रभात तक चला नहीं,
दीप तो बना दिया,
पतंग सा जला नहीं।

कह रहा है आसमान, प्यार भी है एक छल।
निशा पुकारती रही, रुका न चाँद एक पल।।
ओस अश्रु को बहा,
पंथ को निहारती,
अभाग्य साथ जो रहा,
जीत में भी हारती।

विरह–समुद्र में मिला, निराश को कभी न थल।
निशा पुकारती रही, रुका न चाँद एक पल।।

❖❖❖

आओ फिर से दिया जलायें

- अटल बिहारी वाजपेयी

आओ फिर से दिया जलायें
भरी दुपहरी में अँधियारा,
सूरज परछाई से हारा।
अंतरतम का नेह निचोड़ें,
बुझी हुई बाती सुलगायें।
आओ फिर से दिया जलायें।

हम पड़ाव को समझे मंजिल,
लक्ष्य हुआ आँखों से ओझल।
वर्तमान के मोहजाल में–
आने वाला कल न भुलायें।
आओ फिर से दिया जलायें।

आहुति बाकी, यज्ञ अधूरा,
अपनों के विघ्नों ने घेरा।
अंतिम जय का वज्र बनाने–
नव दधीचि हड्डियाँ गलायें।
आओ फिर से दिया जलायें।

❖❖❖

करुण पुकार

– हरिवंशराय बच्चन

करुण पुकार! करुण पुकार।

मानवता करती उद्‌भूत,
कैसे दानवता के पूत।
जो पिशाचपन को अपनाकर,
बनते महानाश के दूत।
जिनके पग से कुचला जाकर जग–जीवन करता चीत्कार।
करुण पुकार। करुण पुकार।

मानव हो व्यक्तित्व विहीन,
जड़, निर्मम, निर्बुद्धि मशीन।
आततायियों के इंगित पर,
करता नंगा नाच नवीन।
युग–युग की सभ्यता देख यह कर उठती है हाहाकार।
करुण पुकार। करुण पुकार।

कारागारों का प्राचीर,
बंदी करता कभी शरीर।
चोर, डाकुओं, हत्यारों का,
आज जालिमों की जंजीर–
में जकड़े आदर्श सड़ रहे, घुटते हैं उत्कृष्ट विचार।
करुण पुकार। करुण पुकार।

❖❖❖

एक भावना

- हरिनारायण व्यास

इस पुरानी जिन्दगी की जेल में
जन्म लेता है, नया मन।
मुक्त नीलाकाश की लम्बी भुजायें–
हैं, समेटे कोटि युग से सूर्य, शशि, नीहारिका के ज्योति–तन।
यह दुखी संसृति हमारी,
स्वप्न की सुन्दर पिटारी–
भी इसी की बाहुओं में आत्म–विस्मृत, सुप्त निज में ही
सिमट लिपटी हुई है।
किन्तु मन ब्रह्माण्ड इससे भी बड़ा है–
जो कि जीवन कोठरी में जन्म लेता है, नया बन,
आज इस ब्रह्माण्ड में ही उठ रहा है।
प्रेरणा का जन्म जीवन–भरा स्पन्दन–भरा–
आषाढ़ का सुख–पूर्ण धन।
रुग्ण जन–जन,
युद्ध–पथ पर लड़खड़ाता, हाँफता–
हर चरण पर भीति से बिजली सरीखा काँपता।
तोड़ने को आतुर हुआ यह क्षुद्र बन्धन,
आँज कर पीले नयन में ज्योति का धुँधला सपन।
जल रहीं प्राचीनताएँ, बाँध छाती पर मरण का एक क्षण।
इस अँधेरे की पुरानी ओढ़नी को बेध कर–
आ रही ऊपर नये युग की किरण।

❖❖❖

जोड़ियाँ तो बनाता है, रब

– गोपाल कृष्ण शर्मा मृदुल

यह धनुष तो वज्र का जैसे बना है
टूटता ही नहीं।
फिर–फिर लौटते हैं जनक असफल, थके–हारे,
सिर झुकाये स्वयं से संवाद करते।
पूछते–क्यों बेअसर हो गये फिर से
शगुन सारे?
लिये वन्दनवार
मालिन राह में मिलती कभी जब,
दृष्टि पृथ्वी पर गड़ाये बहुत तेजी से निकलते
और सखियाँ लौटतीं ससुराल से जब।
माँ बहुत उद्विग्न रहती उन दिनों है
आँख में आँसू मचलते।
पस्त होते हौसलों में भी
निकल पड़ते पिता फिर
एक टूटी नाव ज्यों,
तूफान में खोजे किनारे।
रूप–रंग, कद, आयु, शिक्षा, कुण्डली, कुल,
दक्षिणा–संकल्प क्या है पूछते सब।
और फिर कोई बहाना खोजकर
कुछ वेदना के भाव दिखलाकर बताते
जोड़ियों को तो बनाता है सदा रब।
बहुत पहले बताते थे,
पर नहीं कुछ बोलते अब लौटने पर
पूछती माँ भी नहीं, केवल निहारे।

❖❖❖

मैं प्रगति का गीत गाता जा रहा हूँ

- केदारनाथ पाण्डेय

प्रति चरण पर मैं प्रगति का गीत गाता जा रहा हूँ।
जा रहा हूँ मैं अकेला
शून्य पथ वीरान सारा,
विघ्न की बदली मचलकर
है, छिपाती लक्ष्य तारा।
दूर मंजिल है न जाने
क्यों स्वयं मुस्का रहा हूँ।।
जलधि सा गम्भीर हूँ, मैं
चेतना मेरी निराली,
प्रगति का संदेशवाहक
लौट आऊँगा न खाली।
कंटकों के बीच सुमनों की
मधुरिमा पा रहा हूँ।।
तुम करो उपहास, पर–
मैं तो हूँ सदा का विजेता,
तुम समय की माँग पर
सत्वर–नवल संसृति प्रजेता।
आज तक की निज अगति पर
मैं स्वयं शरमा रहा हूँ।।
आज सहमी सी हवाएँ
मन्द–मन्थर चल रही हैं,
दिव्य जीवन की सुनहली रश्मियाँ
भी बल रही हैं।
मैं युगों पर निज प्रगति का
चिह्न देता आ रहा हूँ।।
अखिल वसुधा तो बहुत
पहले बिहँसते माप छोड़ा,
अभी तो कल ही बड़ा
एवरेस्ट का अभिमान तोड़ा।
रुक अभी जा लक्ष्य पर निज
अतुल बल बतला रहा हूँ।।

❖❖❖

आँगन से होकर आया है

-कृष्ण मिश्र

सारा वातावरण तुम्हारी साँसों की खुशबू से पूरित,
शायद यह मधुमास तुम्हारे आँगन से होकर आया है।

इससे पहले यह मादकता, कभी न थी वातावरणों में,
महक न थी ऐसी फूलों में. बहक नहीं थी आचरणों में,
मन में यह भटकाव, न मौसम में इतना आवारापन था,
मस्ती का माहौल नहीं था, जीवन में बस खारापन था,
लेकिन कल से अनायास ही मौसम में इतना परिवर्तन,
शायद यह वातास तुम्हारे मधुबन से होकर आया है।

आज न जाने अरुणोदय में, शबनम भी सुस्मित सुरभित है,
किरणों में ताजगी सुवासित, कलियों का मस्तक गर्वित है,
आकाशी नीलिमा न जाने क्यों कर संयम तोड़ रही है,
ऊषा का अनुबंध अजाने पुलकित मन से जोड़ रही है,
ऐसा खुशियों का मौसम है, बेहोशी के आलम वाला,
शायद पुष्पित हास तुम्हारे गोपन से होकर आया है।

मेरे चारों ओर तुम्हारी खुशियों का उपवन महका है,
शायद इसीलिए बिन मौसम मेरा मन पंछी चहका है,
मलयानिल चन्दन के बन से खुशबू ले अगवानी करता,
उन्मादी मधु ऋतु का झोंका सबसे छेड़ाखानी करता,
सिंदूरी संध्या सतवंती साज सँवारे मुस्काती है,
यह चंदनी सुवास तुम्हारे उपवन से हो कर आया है।

❖❖❖

ठहरो साथी

– ओम नीरव

आगे है भीषण अंधकार, ठहरो साथी,
कर लो थोड़ा मन में विचार, ठहरो साथी।

दासता–निशा का भोर
कहो, किसने देखा?
जंगल में नाचा मोर
कहो, किसने देखा?
अब तक उसका है इंतजार, ठहरो साथी।
आगे है भीषण अंधकार, ठहरो साथी।

भ्रम है, कहना
केवल स्वराज को ही सुराज,
भ्रम है, कहना
गति को ही प्रगति आज,
लो पहले अपना भ्रम निवार, ठहरो साथी,
आगे है भीषण अंधकार, ठहरो साथी।

सह लो कितने भी अनाचार
बनकर सहिष्णु,
पर लक्ष्य तभी पाओगे
जब होगे जयिष्णु,
कुचलो कंटक लो पथ सँवार, ठहरो साथी,
आगे है भीषण अंधकार, ठहरो साथी।

यह अंधकार पथ का है
दैवी शाप नहीं,
या पूर्व जन्म का संचित
कोई पाप नहीं।
तम कायर मन का दुर्विचार, ठहरो साथी,
आगे है भीषण अंधकार, ठहरो साथी।

बाहर के सूरज से नीरव
कब रात कटी,
हर उदय अंततः अस्त बना
आ रात डटी।
अब अपना सूरज लो निखार, ठहरो साथी,
आगे है भीषण अंधकार, ठहरो साथी।

❖❖❖

गीतों के गाँव

– ओम निश्चल

फूलों के गाँव,
फसलों के गाँव,
आओ चलें, गीतों के गाँव।

महके कोई रह, रह के फूल,
रेशम हुई राहों की धूल,
बहती हुई, अल्हड़ नदी
ढहते हुए, यादों के कूल।
चंदा के गाँव,
सूरज के गाँव,
आओ चलें, तारों के गाँव।

पीपल के पात महुए के पात,
आँचल भरे हर पल सौगात,
सावन झरे मोती के बूँद,
फागुनी धूप सहलाए गात।
पीपल की छाँव,
निबिया की छाँव,
आओ चलें, सुख–दुख की छाँव।

नदिया का जल पोखर का जल,
मीठी छुवन हर छिन हर पल,
गुजरे हुए बासंती दिन,
अब भी नहीं होते ओझल।
भटकें नहीं,
लहरों के पाँव,
आओ चलें, रिश्तों की नाव।

❖❖❖

जरा मुस्कुरा तो दे

- अशोक चक्रधर

माना, तू अजनबी है,
और मैं भी, अजनबी हूँ,
डरने की बात क्या है
जरा मुस्कुरा तो दे।

हूँ मैं भी एक इंसां,
और तू भी एक इंसां,
ऐसी भी बात क्या है,
जरा मुस्कुरा तो दे।

गम की घटा घिरी है,
तू भी है गमजदा सा,
रस्ता जुदा–जुदा है,
जरा मुस्कुरा तो दे।

हाँ, तेरे लिए मेरा,
और मेरे लिए तेरा,
चेहरा नया–नया है,
जरा मुस्कुरा तो दे।

तू सामने है मेरे,
मैं सामने हूँ, तेरे,
यूँ ही सामना हुआ है,
जरा मुस्कुरा तो दे।

मैं भी न मिलूँ शायद,
तू भी न मिले शायद,
इतनी बड़ी दुनिया है,
जरा मुस्कुरा तो दे।

❖❖❖

हर लेती हैं बेटियाँ

– अशोक अंजुम

सहती रहती रात–दिन, तरह–तरह के तीर,
हर लेती हैं बेटियाँ, घर–आँगन की पीर।

सौदागर इस देश के, रहते मद में चूर,
बिटिया को महँगा लगे, माथे का सिंदूर ।

नहीं दुपट्टे की तरफ, उठे किसी के हाथ,
बहना घर से जो चले, भैया चलता साथ।

माँग भरी ना अब तलक, गया रूप–रंग–नूर,
उनकी माँगों ने किये, सपने चकनाचूर ।

खून–पसीना जोड़कर, लो दहेज के साथ,
बिटिया के करने चला, दुखिया पीले हाथ।

आँगन की तुलसी जली, धूप पड़ी यों तेज,
इक तुलसी ससुराल में, झुलसी बिना दहेज।

बाबुल की छत ले गया, आखिर कन्यादान,
बेटी के घर के लिए, अंजुम बिका मकान।

तेरे पाँवों से जगें, घर–आँगन के भाग,
जा बेटी परदेस जा, जुग–जुग जिये सुहाग

घर–आँगन में हर तरफ, एक मधुर गुंजार,
हँसी–ठिठोली बेटियाँ, व्रत–उत्सव–त्यौहार।

कुछ मंत्रों ने रच दिये, नये–नये संबंध,
बाबुल के अँगना खिली, पिय–घर चली सुगंध।

बापू, माँ, भाई, बहन, रोये घर–संसार,
चिड़िया चहकी कुछ बरस, उड़ी पिया के द्वार।

बेटी गंगा की लहर, बेटी कोमल राग,
जहाँ रहे, हर हाल में, रोशन करे चिराग।

चुप्पी साध ले, मत कर व्यर्थ सवाल,
पीहर पर भारी पड़े, क्यों इक दिन ससुराल।

❖❖❖

तितली रानी आना री

– अभिरंजन कुमार

आना री आना, ओ तितली रानी आना री!
मेरे साथ खेलना, करना नहीं बहाना री!

फूलों के कानों में गुप–चुप क्या बतियाती हो,
इधर–उधर की उससे बातें कहने जाती हो,
चुगली अच्छी नहीं, पड़ेगा क्या समझाना री?

इतने सारे रंग कहाँ से पाए हैं, तूने,
अपने प्यारे पंख जरा देना मुझको छूने,
नहीं सताऊँगी बिल्कुल भी, मत डर जाना री!
भाते सब तुमको गुलाब या जूही और चमेली,
इन सबसे क्या कम कोमल है मेरी नरम हथेली,
बोलो, कितना तुम्हें पड़ेगा शहद चटाना री!

इतनी बार बुलातीं, फिर भी बड़ा अकड़ती हो,
करूँ खुशामद जितनी, उतना नखरे करती हो,
मत आओ, पर समझो ठीक नहीं इतराना री!
बिस्तर तेरा पँखुड़ियों का, मेरा माँ का आँचल,
तुम पराग खाती, मैं खाती दूध–मिठाई–फल,
भौरें तुम्हें सुनाते, मुझको दादी गाना री।

अकड़ रही हो इसीलिए न, पंख तुम्हारे पास,
जब चाहो फूलों पर बैठो या छू लो आकाश,
तुम्हें न पड़ता टीचर जी के डंडे खाना री।

❖❖❖

छोटी चिड़िया, बड़ी चिड़िया

– सुरेन्द्र झा

छोटी चिड़िया पेड़ पर,
बैठी बड़ी मुंडेर पर।

छोटी चिड़िया ने फल खाये
और बड़ी ने दाने,
फिर दोनों ने, चीं–चीं, चीं–चीं
खूब सुनाये गाने।

गाने से जब पच गया खाना
खाया, फिर से सेर भर।

छोटी ने फिर दाना खाया–
और बड़ी ने फल,
इसके बाद पिया दोनों ने
नदी किनारे जल।
फिर दुलार से चोंच मिलाई
आजू–बाजू घेर कर।

अब गाने, गा–गाकर, दोनों–
आईं सबसे कहने,
अचरज क्यों करते हो भाई
आखिर हम दो बहनें।
जब जी चाहे हम तो प्यारे
प्यार करेंगे, ढेर भर।

❖❖❖

कितने दिन हुए देखे

– गुलाब सिंह

फूल पर बैठा हुआ भँवरा,
शाख पर गाती हुई चिड़िया।
घास पर बैठी हुई तितली–
और तितली देखती गुड़िया।
हमें कितने दिन हुए देखे।

घाट के नीचे झुके दो पेड़,
धार पर ठहरी हुई दो आँखें,
सतह से उठता हुआ बादल–
और रह, रह फड़कती दो पाँखें।
हमें कितने दिन हुए देखे ।

बाँह–सी फैली हुई राहें,
गोद–सा वह धूल का संसार।
धूल पर उभरे हुए दो पाँव–
और उन पर बिछा हरसिंगार।
हमें कितने दिन हुए देखे।

धुप अँधेरे में दिए की लौ,
दिए जल पर भी जलाते लोग।
रोशनी के साथ बहती नदी–
और उससे नाव का संयोग।
हमें कितने दिन हुए देखे।

❖❖❖

खटपट-खटपट

- गोपीचंद श्रीनागर

कोयल दीदी
खाकर, गाती,
मीठे, मीठे आम रे!
गिल्लो रानी
कुट, कुट खाती,
बैठी ले बादाम रे।
गौरैया जी
बैठ डाल पर
करती हैं, आराम रे।
सूरज दादा
लौट चले हैं,
ढल जाती जब शाम रे।
खेल–कूदकर
हम भी चल दें,
अपने–अपने काम रे।
मीठी मम्मी
घर में करती,
खटपट, खटपट काम रे।
डगमग, डगमग
बाबा चलते,
पकड़ लकड़िया थाम रे।
आँख मूँदकर
मेरी दादी,
लेती, हरि का नाम रे।

❖❖❖

कर्मयोग

- कविता मालवीय

आत्मसाक्षात्कार की लड़ाई है,
इन्द्रिय भोग से निवृत्ति।
सारे द्वंद्वों से मुक्ति।
राग और क्रोध से विरक्ति।
इच्छाओं की तुष्टि में सख्ती,
सिर्फ एक सत्ता से भावाभिव्यक्ति।
पर मैं!
सरसों के खेत और तितली के रंगों में,
इश्क संजीदा होने पर नजरों के फंदों में,
आसमान में आकार बनाते परिंदों में,
नवजात शिशु के पहले रुदन के छंदों में,
मोहग्रस्त हूँ,
भावों की या प्रशासन की अव्यवस्था पर
क्रोध ग्रस्त हूँ,
क्योंकि मैं बोधग्रस्त हूँ।
हर उस शख्स की आँखों में
वह सत्ता विराजमान है,
जहाँ अगले के लिए कुछ करने का भान है।
उसकी इस कायनात पर मेरा दिल
बाकायदा कुर्बान है,
पर आत्मसाक्षात्कार।
अभी भी मेरी वहाँ अटकी जान है।
क्योंकि मैं कर्मरत हूँ।

❖❖❖

सपने बीजते हैं

– भावना सक्सेना

सड़क किनारे
उग आई बस्तियों में भी
होते हैं वही सुख–दुःख–
सपने, आस–उम्मीदें।

आसमां को काटती
ईंटों पर धरी टीन,
कतर नहीं पाती
पंख सपनों के।

टीन–तले पसरी भूमि
होती नहीं है परती,
उसमें गिरे स्वेद–कण
बीजते, पनप जाते हैं।

बाँस के कोनों पर बँधे
तिरपाल की टप–टप से–
नम भूमि में जन्म लेती हैं
असीम संभावनाएँ।

झिंगोले में पड़े बूढ़े पंजर
होते हैं, सपनों की कब्रगाह,
आँखें मगर उलीच पाती नहीं
भविष्य की संभावनाएँ।

अनकही दास्तां दर्द की–
देती है, दंश बार–बार,
उफनते हैं, सीने में
अधूरे ख्वाबों के खारे समंदर।

मेहनतकश बाजुएँ
झोंक देती हैं, जान,
हार जाती हैं, अक्सर
करते बुर्जुआ बुर्जों का निर्माण।

फिर भी सपने बीजते,
पनपते रहते हैं,
जीते रहने के लिए
हौसला मन को दिए रहते हैं।

❖❖❖

बड़ी दुश्वार हैं राहें जो तू दे साथ, चलते हैं

- पूजा श्रीवास्तव

बड़ी दुश्वार हैं राहें जो तू दे साथ, चलते हैं।
समन्दर है, जहाँ तक भी किनारे, साथ चलते हैं।

नहीं थमते सुबह और रात के मानिंद पलकों में,
नजर जाये जहाँ तक भी, इशारे साथ चलते हैं।

अजब थे लोग जो तन्हा ही मंजिल को झुका आये,
यहाँ तो हर कदम संगी सहारे साथ चलते हैं।

जरा सी बात पर यूँ रूठकर बैठा नहीं करते,
ये रिश्ते तो सदा बनते, बिगड़ते साथ चलते हैं।

हमारे वास्ते तो दश्ते वीरां भी नहीं तनहा,
जहाँ से हम गुजरते हैं, ये जलसे साथ चलते हैं।

उठा रक्खे हैं कांधों पर गमे असबाब सब तेरे,
न ये कहना कि हम नाहक ही तेरे साथ चलते हैं।

हमारा दिल भी है मुफलिस के खाली पेट के जैसा,
तसल्ली साथ रखता है तो फाँके साथ चलते हैं।

गमों को भी गुजर करने का कोई तो सहारा हो,
नहीं मिलता है इनको तू तो मेरे साथ चलते हैं।

जरूरी तो नहीं कि दोस्ती हरदम निभायेगा,
कभी सूरज से बिगड़े तो अँधेरे साथ चलते हैं।

❖❖❖

मूक कर्मयोगी

- दामिनी

शुक्र है चीटियाँ
राशिफल नहीं पढ़ पाती हैं।
सितारों की बनती, बिगड़ती चाल या–
पूर्वजन्म के कर्मों की उन्हें
चिंता नहीं सताती है।
आस–पास से गुजरती हरेक चींटी के लिए,
ये चीटियाँ ठहरती तो जरूर हैं,
क्या कभी इन्हें भी
बनावटी मुस्कान या सभ्यता के मुखौटों की
जरूरत पेश आती हैं?
अपने से दस गुना बड़े अनाज के दाने को
लुढ़काये लिये चली जाती हैं,
पर क्यों नहीं ये कभी
पसीने से लथपथ या थकान से चूर
नजर आती हैं?
क्या कभी इन्हें भी होता होगा तनाव या–
कभी अपनों के अकेलेपन की चिंता सताती है?
भीड़ में रहकर भी,
कौन–सी 'गीता' की उपासक हैं, ये
कि हर वक्त,
कर्म का मंत्र ही दोहराती नजर आती हैं?
या फिर एक अनाज का दाना या टुकड़ा–भर
ही
इनके सारे जीवन की धुरी है?
चींटियों का संसार
इंसानों के आस–पास ही बसा पाता है,
पर फिर भी कोई 'ह्यूमन–फ्लू'
इन्हें छू तक नहीं पाता है।
शायद अनुराग, प्यार से नहीं हैं
ये भी अछूती।

अंडों से निकल संपूर्ण–चींटी बनने तक
इनका वजूद भी माँ से ही
दिशा पाता है,
जीवन–मृत्यु का चक्र
इनके जीवन में भी आता है।
पर कोई बीता हुआ या आनेवाला कल
इनके आज को उगने और
सार्थकता से गुजरने से
रोक नहीं पाता है।।

❖❖❖

बेटी के लिए

- ज्योति चावला

ड्रेसिंग–टेबल के शीशे पर चिपकी
मेरी बिन्दी को देखकर हँसती है मेरी
डेढ़ साल की अबोध बेटी।
तुतलाती जबान से पुकारती है मुझे और
उससे दूर ऑफिस में बैठ
फाइलों से घिरी मुझे
हिचकी–सी बँध आती है।

धीरे–से आँखें मीच और मन में
लेकर उसका नाम मैं–
बुदबुदाती हूँ, कुछ धीरे–से और
हिचकी थम जाती है ऐसे–
जैसे अपनी माँ की व्यस्तता को समझ
उस मासूम ने अपने मन को बहला लिया है।

मेरी बेटी अब समझने लगी है,
मेरे आफिस जाने के समय को
और चुपचाप धीरे–से हाथ हिला देती है,
मुझे घर छोड़ते समय उसकी आँखों में
एक लम्बा इन्तजार दिखाई देता है।

आफिस से जब चलती हूँ घर के लिए
तो मुट्ठी में भर लेती हूँ,
उसकी पसन्द की चीजें–
टाफी, चाकलेट, रंग–बिरंगे फूल,
बहलाने के लिए मुट्ठी भर कहानियाँ–
झूठी–सच्ची,
इस तरह एक दिन और
मैं उसकी उदासी को
हँसी में बदलने की कोशिश करती हूँ ।

मेरी बेटी अपनी तुतलाती जबान में–
बताती है, अपना तुतलाता नाम 'कावेरी',
और मेरे भीतर एक नदी
आकार लेने लगती है।

❖❖❖

व्यर्थ नहीं हूँ, मैं

- कविता किरण

व्यर्थ नहीं हूँ, मैं
जो तुम सिद्ध करने में लगे हो।
बल्कि मेरे कारण ही हो तुम अर्थवान
अन्यथा अनर्थ का पर्यायवाची होकर रह जाते तुम।
मैं स्त्री हूँ,
सहती हूँ,
तभी तो तुम कर पाते हो गर्व अपने पुरुष होने पर,
मैं झुकती हूँ।
तभी तो ऊँचा उठ पाता है,
तुम्हारे अंहकार का आकाश।
मैं सिसकती हूँ,
तभी तुम कर पाते हो खुलकर अट्टहास।
हूँ, व्यवस्थित मैं
इसलिए तुम रहते हो अस्त–व्यस्त।
मैं मर्यादित हूँ,
इसीलिए तुम लाँघ जाते हो सारी सीमायें।
स्त्री हूँ मैं।
हो सकती हूँ पुरुष
पर नहीं होती,
रहती हूँ, स्त्री इसलिए–
ताकि जीवित रहे तुम्हारा पुरुष,
मेरी नम्रता से ही पलता है, तुम्हारा पौरुष,
मैं समर्पित हूँ।
इसीलिए हूँ उपेक्षित, तिरस्कृत।
त्यागती हूँ, अपना स्वाभिमान,
ताकि आहत न हो तुम्हारा अभिमान।
जीती हूँ असुरक्षा में–
ताकि सुरक्षित रह सके–
तुम्हारा दंभ।
सुनो!
व्यर्थ नहीं हूँ मैं!
जो तुम सिद्ध करने में लगे हो।
बल्कि मेरे कारण ही हो तुम अर्थवान
अन्यथा अनर्थ का पर्यायवाची होकर रह जाते तुम।

❖❖❖

शब्द नहीं कह पाते

– ऋतु पल्लवी

कोई बिम्ब,कोई प्रतीक, कोई उपमान,
नहीं समझ पाते, ये भाव अनाम।
जैसे पूर्ण विराम के बाद शून्य–शून्य–शून्य,
और पाठक रुक कर कुछ सोचता है।
पर लेखक लिखता नहीं,
लेखक भी कहता है पर चुक जाते हैं शब्द।
समझने के लिए रीता अयाचित अंतराल।
शब्दों की कोई इयत्ता नहीं,कोई सत्ता नहीं।
असीम आकाश का निस्सीम खुलापन,
अन्जानी राहों में भटकते पंछी,
अचीन्ही दिशाएँ खोजती हवाएँ,
बादलों के बनते–बिगड़ते झुरमुट,
और इन सबको देखती आँखें–
जो महसूसती हैं–बिलकुल निजी क्षण वह
पर कौन,कहाँ,किसे,कितना कह पाता है।
अकेलापन,अलगाववाद,कुंठा–संत्रास,
आज के समय की पहचान हैं ये, अवांछित शब्द संभवतः आयातित।
जिस प्रकार भारी भरकम विज्ञान के आने पर–
खाली हो जाता है, साहित्य का बाजार,
उसी प्रकार इन शब्दों ने खाली कर दिये,
शब्दों के सभी अर्थ।
जैसे कभी बोलते–बोलते स्वयं रुक जाते हैं हम।
बात की निरर्थकता समझकर,
बहुत कुछ समेटते–समेटते,
अटक जाते हैं, बीच में ही कहीं।
संवेदनाएँ मरी नहीं हैं .
(मर जायेंगी तो हम जिंदा कहाँ रहेंगे?)
आज भी वह फूटकर रोता है ,
किसी विस्मृत होती सोच पर ,रोते–रोते हँस देता है।
पर मन के इस ज्वार को,
उच्छलित होती भावनाओं को,अनियंत्रित वेदनाओं को,
आवाज की पुकार नहीं मिलती।

❖❖❖

व्यथा

- उषारानी राव

त्वरित गति से बहुत कुछ घटता चला
गया।
रूप हीन है निष्ठा–
कोई स्वरूप नहीं,
कोई अर्थ नहीं,
वस्त्र वलय से आवरित
नेत्रों में अपने,
क्षितिज का फैलाव
करते–करते
ओढ़ लिया,
अंधापन गांधारी ने।

महासतीत्व के
सिंहासन पर बैठ
करने लगी अपने अहं की तुष्टि।
अदृश्य दीवारों में
स्वयं ही बंदी,
ओढ़े हुए अंधत्व से विषवमन किया।
अबोध सुयोधन में
अकारण नहीं था यह।

विवाह के छल का प्रतिरोध
या समर्पण पतिव्रता का,
युद्धं देहि की कांक्षा बलवती हो उठी।
प्रश्न था
सत्ता का,
अधिकार का,
अंततः
टूटी जाँघ भग्न देह लिए
किया प्रश्न

दुर्योधन ने–
जन्म तो दिया तुमने,
रचा नहीं पांडवों –सा चरित्र।
निरुत्तर संज्ञाहीन गांधारी
अभिमान भंग।

❖❖❖

मैं गाँव चली

– अलका वर्मा

लेकर सारे ख्वाब
मैं गाँव चली।
छोड़ सारे बिषाद
मैं अपने गाँव चली।

अमुआ की डाली,
कोयल मतवाली,
घुमने सारे बाग,
मैं अपने गाँव चली।

खेतों की हरियाली,
बैलगाड़ी सवारी,
खेलने करिया झुमरी,
मैं अपने गाँव चली।

दादा की दुलारी,
दादी की खमौनी,
लेकर सारे स्वाद,
मैं अपने गाँव चली।

धान की कटाई,
लाई, मुरही बेसाही,
देकर बदले में धान,
मैं अपने गाँव चली।

जन्माष्टमी का मेला,
कृष्णा झूले झूला,
खाने जलेबी मिठाई,
मैं अपने गाँव चली।

❖❖❖

बिटिया बड़ी हो गई

- अंजना बख्शी

देख रही थी
उस रोज बेटी को,
सजते, सँवरते
शीशे में अपनी
आकृति घंटों निहारते,
नयनों में आस का
काजल लगाते।

उसके दुपट्टे को
बार–बार सरकते–
और फिर अपनी उलझी–
लटों को सुलझाते,
हम उम्र लड़कियों के–
साथ हँसते–खिलखिलाते।

माँ से अपनी हर बात छिपाते,
अकेले में खुद से
सवाल करते,
फिर शरमा के
सर को झुकाते।

और फिर कभी स्तब्ध–
मौन हो जाते,
कभी–कभी आँखों–
से आँसू बहाते,
फिर दोनों हाथों से
मुँह को छिपाते।

देखकर सोचती हूँ उसे,
लगता है,
बिटिया अब बड़ी
हो गई है।।

❖❖❖

उम्मीद

– अनिल त्रिपाठी

बस, बात कुछ बनी नहीं
कह कर चल दिया,
सुदूर पूरब की ओर
मेरे गाँव का गवैया ।

उसे विश्वास है कि
अपने सरगम का आठवाँ स्वर
वह जरूर ढूँढ़ निकालेगा,
पश्चिम की बजाय पूरब से ।

वह सुन रहा है
एक अस्पष्ट सी आवाज,
नालन्दा के खण्डहरों में या–
फिर वहीं कहीं जहाँ–
लटका है, चेथरिया पीर ।

धुन्ध के बीच समय को आँकता
ठीक अपने सिर के ऊपर
आधे चाँद की टोपी पहनकर
अब वह 'नि' के बाद 'शा'
देख रहा है।

और उसकी चेतना
अंकन रही है, 'सहर',
जहाँ उसे मिल सकेगा
वह आठवाँ स्वर ।

❖❖❖

बाजार

- घनश्याम कुमार

जिंदा रहेंगे वे लोग ही
जिनके गले में टंगा होगा
मँहगा प्राइस–टैग।
जिन्दा रहेंगे, वे लड़के–लडकियाँ ही–
जो बाजारू भाषा में नाचना, मटकना,
मुस्कुराना और तुतलाना सीखेंगे।
जिन्दा रहेंगी वही झीलें,नदियाँ
और पोखर–
जो बोतल–बंद पानी उद्योग के लिए
काम के सिद्ध होंगे।
जिन्दा रहेंगे वे पहाड़ और समंदर ही
जो नंगे टूरिस्टों–
की भीड़ जुटाने में कामयाब होंगे।

बची रह सकेगी वही भाषा–
जो बाजार में अपना–
सिक्का चलाने में कामयाब होगी,
और बची रहेगी मात्र वही कला–
जो वैश्विक बाजार की बंसी पर
आलाप लेगी।
और उकेरेगी वह चित्र
जिनके दाम लाखों डालर
में तय किए जायेंगे
बाकी का तो राम ही मालिक होगा,
जिनको बाजार–
मूल्यहीनता का पट्टा
बाँधकर अपनी चौहद्दी से
बाहर खदेड़ देगा।

इसलिए अपार संभावनाओं वाले
इस बाजारवादी युग में भी
मैं बुरी तरह से डरा हुआ हूँ।
और मेरी ही तरह डरी हुई है
हर वह चीज
जिसे अब तक बाजार में
न बेचे जाने योग्य
घोषित किया गया है।
न खरीदे जाने योग्य.....

❖❖❖

डरा हुआ आदमी और कविता

- आलोक कुमार मिश्रा

राजनीति में मुझे पड़ना नहीं था
इसलिए समाज पर लिखी
मैंने एक कविता।

कविता में अनायास उठे कुछ सवाल,
सवालों पर बहुत से लोगों ने
किया बवाल,
कहा संस्कृति की महानता के गान की बजाय
क्यों समाज की मर्यादा रहे हो उछाल,
यह कहकर कविता मिटा दी गई।

डरा हुआ मैं सोचने लगा
परिवार पर लिखूँ,
कोशिश कर ही रहा था कि
परिवार नाराज होकर कहने लगा
कुछ काम कर लो
ये कविता काम नहीं आयेगी

अन्त में,
मैंने सोचा प्रेम पर लिखता हूँ।
सबसे सुरक्षित है यह
इस पर कोई आवाज नहीं उठ पायेगी।
पर लाख चाहने पर भी लिख न सका
प्रेम पर कविता,
आखिर मैं जिससे प्रेम करूँ या
मुझसे जो करे
ऐसा कोई तो होता।

एक डरा हुआ शून्य आदमी
आखिर लिखे भी तो क्या ?

❖❖❖

आदमी से आदमी तक

- कौशल किशोर

मैंने आदमी बनने की कोशिश की।

वह झूठी हो सकती है,
वह सही हो सकती है,
पर मैंने तो कोशिश की।

पर उन्होंने क्या किया
क्या किया मेरे साथ सलूक?

मेरे हाथों में पहना दी गई,
लोहे की मजबूत हथकड़ियाँ।
पैरों में बाँधकर जंजीरें
मुझे दौड़ाया गया,
विचारों के जंगल में।
आँखों पर बाँधकर आश्वासनों की पट्टी,
तौला गया मेरी यातनाओं को
किसी पुराने बटखरे से।

मेरी पीठ को बना दिया गया
विज्ञापन–प्रचार का सस्ता–सा माध्यम,
जिस पर चिपका दिये गये–
सिनेमा, सर्कस, बाजार, सभा...
के रंग–बिरंगे पोस्टर।
और मेरी कविता को पुराने आदर्शों
धारणाओं, परम्पराओं से जोड़ने की कोशिश की गई–
जिनके केचुल छोड, निकल आया हूँ, बाहर।

यह होता आया है, मेरे साथ,
यह होता रहा है, मेरे साथ,
आखिर कब तक
यह होता रहेगा मेरे साथ?

❖❖❖

पूछते हैं लोग मुझसे गीत यह अवसाद के क्यों

- गौरव शुक्ल

पूछते हैं लोग मुझसे, गीत यह अवसाद के क्यों?
खो गया है क्या कि जिसको भूल तुम सकते नहीं हो?
कौन है वह याद करने से जिसे थकते नहीं हो?
भार यह भारी उठाकर दूर कितनी जा सकोगे?
इस निराशा, वेदना में डूबकर क्या पा सकोगे?

गत बिसारो और आगत का करो स्वागत विहँसकर,
पात्र बनते जा रहे हो लोक में अपवाद के क्यों?
पूछते हैं लोग मुझसे, गीत यह अवसाद के क्यों?

बह चुका इतने दिनों में जाह्नवी से नीर कितना,
चल चुकी तब से धरा भी वक्ष नभ का चीर कितना,
मेघ कितने, बार कितनी, आ बरस कर जा चुके हैं,
फूल कितने, बार कितनी, खिल चुके, मुरझा चुके हैं।

इस विवर्तित विश्व में जब कुछ न ठहरा, तुम ठहर कर,
लिख रहे हो छंद पीड़ा, व्यग्रता, उन्माद के क्यों?
पूछते हैं लोग मुझसे, गीत यह अवसाद के क्यों?

क्या कहूँ इस प्रश्न का उत्तर कहाँ से ढूँढ़ लाऊँ,
और उन आत्मीय जन को भेद क्या इसका बताऊँ,
क्या घटा है साथ मेरे, जो न घटना चाहिए था,
फट गया है चित्र वह जिसको न फटना चाहिए था।

मैं निरुत्तर हूँ, क्षमा करना मुझे आत्मीय मेरे,
क्या कहूँ है यह विषय लायक नहीं संवाद के क्यों?
पूछते हैं लोग मुझसे, गीत यह अवसाद के क्यों?

❖❖❖

रिश्तों के झुन-झुने

- कमलेश कमल

रिश्तों के झुनझुने
यूँ ही नहीं छूटते,
न छूटने ही देते हैं।
इनका बजते रहना
एक उपक्रम भर नहीं होता,
होता है एक
आश्वासन भी।
जिसको सुन
किलक उठता है,
किसी कमजोर क्षण–
में दुबका हुआ मन।
फिर नहीं ढूँढ़ता यह
जज्बात के धागे का
उलझा दूसरा सिरा।
न ही देख पाता
रेहन पर रखे रिश्ते
या फिर इसके
जहीन और महीन जुगत।
ये तो लोरी हैं,
अलसाती ख्वाबों के–
जिसे सुन आती है
एक पुरसुकून नींद,
इन्हें बजने ही दो।

❖❖❖

मेरी आँख रात भर रोई

- चेतन दुबे अनिल

मेरी आँख रात भर रोई,
तेरी इतनी याद सताई।
तारे गिन, गिन रात काट दी,
चिन्तन के घोड़े दौड़ाये,
अन्तर्मन की पीर पाट दी।
विश्वासों ने छला इस कदर–
पल–पल मैंने पलक भिंगोई।
मेरी आँख रात भर रोई।।

तुम बिन सूनी हुई जिन्दगी,
एकाकी जीवन काटा है,
सारे सपने बिखर गये हैं,
चहुँदिश पसरा सन्नाटा है।
कुछ भी पता नहीं चलता है,
मेरी नींद कहाँ पर खोई?
मेरी आँख रात भर रोई।।

मुस्कानों के बदले आँसू
तुमने मन को मार दिया है,
मेरे इन कोमल कंधों पर,
बोझिल मन का भार दिया है।
नहीं दृगों के आँसू थमते,
उर में इतनी पीर पिरोई।
मेरी आँख रात भर रोई।।

❖❖❖

उनके हाथों को थाम भूल गये

- उत्कर्ष अग्निहोत्री

उनके हाथों को थाम, भूल गये,
उलझने हम तमाम, भूल गये।

बैठते थे कभी जो मिल–जुल के,
आज हम ऐसी शाम, भूल गये।

राह जिसने दिखाई हम सबको,
चलके दो–चार गाम भूल गये।

हाय, हैलो हुए हैं, अभिवादन,
आज हम राम–राम भूल गये।

जब वो आये तो बज्म में शायर,
पढ़ते–पढ़ते कलाम भूल गये।

आप जब हमसफर हुए, तब से,
हम भी अपना मकाम भूल गये।

देखकर मौत के फरिश्ते को,
शाह कुल इंतिजाम भूल गये।

❖❖❖

स्नेह

-अजय कृष्ण

मुझे फूल पत्तियों से स्नेह है,
लेरुओं, पिल्लों और मेमनों से स्नेह है।
मुझे नीले आसमान, काले पर्वतों,
हरे समंदरों से स्नेह है,
चाँद–तारे, काली रातों
और उगते लाल सूरज से स्नेह है,
मुझे भोर से स्नेह है,
मुझे साँझ से स्नेह है,
तूफान गाते से चलते बसों–ट्रेनों–
की खिड़कियों से बिछड़ते–
गाँव, खेतों, नदी–नालों और–
मेरी ओर देखते उस बाबा से स्नेह है।

मुझे अपने दोस्तों से स्नेह है,
मुझे अपने दुश्मनों से स्नेह है,
दुख से सुख से सबसे है, मुझे स्नेह,
ईर्ष्या और प्रेम को
लील गया है मेरा स्नेह,

बस एक ही भावना है, बरबस
स्नेह, स्नेह प्रगाढ़ स्नेह, स्नेह–
एक सर्वव्याप्त और अन्तिम सत्य है।
जैसे मौत।

❖❖❖

माँ की तस्वीर

– अखिलेश्वर पांडेय

यह मेरी माँ की तस्वीर है।
इसमें मैं भी हूँ,
कुछ भी याद नहीं मुझे
कब खींची गयी थी यह तस्वीर
तब मैं छोटा था।

बीस बरस गुजर गये
अब भी वैसी ही है तस्वीर,
इस तस्वीर में गुड़िया–सी दिखती
छोटी बहन अब ससुराल चली गयी।
माँ अभी तक बची है।
टूटी–फूटी रेखाओं का घना जाल–
और असीम भाव उसके चेहरे पर
गवाह हैं इस बात के
चिंताएँ बढ़ी हैं, उसकी।

पिता ने भले ही किसी तरह धकेली हो जिंदगी,
माँ खुशी चाहती रही सबकी,
ढिबरी से जीवन अंधकार को दूर करती रही माँ,
रखा एक–एक का ख्याल,
सिवाय खुद के।

मैं नहीं जानता
क्या सोचती है माँ ?
वह अभी भी गाँव में है,
सिर्फ तस्वीर है मेरे पास।
सोचता हूँ,
माँ क्या सचमूच,
तब इतनी सुंदर दिखती थी।

❖❖❖

आँसुओं के आचमन का

- अभिषेक

आँसुओं के आचमन का ही मुझे अधिकार दे, दो,
दे सको तो तुम मुझे बस एक यह उपहार दे, दो।
एक पग के साथ का भी,
मैं तुम्हें परिणाम दूँगा।
रुक्मिणी का नाम दूँगा,
द्वारिका–सा धाम दूँगा।
चूम लूँगा हाथ दोनों
और बस इतना कहूँगा।
आज ठहरे सागरों में वेदना का ज्वार दे, दो,
दे सको तो तुम मुझे बस एक ये उपहार दे, दो।
राह पथरीली बहुत है,
धूप भी है, शूल हैं,
और धाराएँ नदी की,
तेज भी प्रतिकूल भी हैं,
मान लो अब बात मेरी,
मुक्त कर दो हाथ अपने।
थक गये हो तुम बहुत ही अब मुझे पतवार दे, दो।
दे सको तो तुम मुझे बस एक यह उपहार दे, दो।
बीच गंगा में कहूँ या–
भोज–पाती पर लिखूँ,
तुम कहो तो हाँ तुम्हारा–
नाम छाती पर लिखूँ,
हार जाओ आज अपनी,
भावनाओं से प्रिये।
और तुम संवेदनाओं को नवल श्रृंगार दे, दो।
दे सको तो तुम मुझे बस एक यह उपहार दे, दो।

❖❖❖

सृजन स्मरण

हरिनारायण व्यास

जन्म-14 अक्टूबर, 1923-14 जनवरी, 2013

लिख दिया तुम्हारा भाग्य समय ने।
उसी पुरानी कलम पुराने शब्द–अर्थ से।
उसी पुराने हास–रुदन, जीवन–बंधन में,
उन्हीं पुराने केयूरों में–
बँधा हुआ है, नया स्वस्थ मन,
नयी उमंगें, नव आशाएँ,
नये स्नेह, उल्लास सृष्टि के संवेदन के।
उन्हीं जीर्ण–जर्जर वस्त्रों में नये आप को ढाँक न पाती।
तुम अभिनव विंशति शताब्दि की–
जागृत नारी,
जिस की साड़ी के अंचल में–
बँधा हुआ है वही पुराना पाप–पंक
अविजेय पुरुष का।

सृजन स्मरण

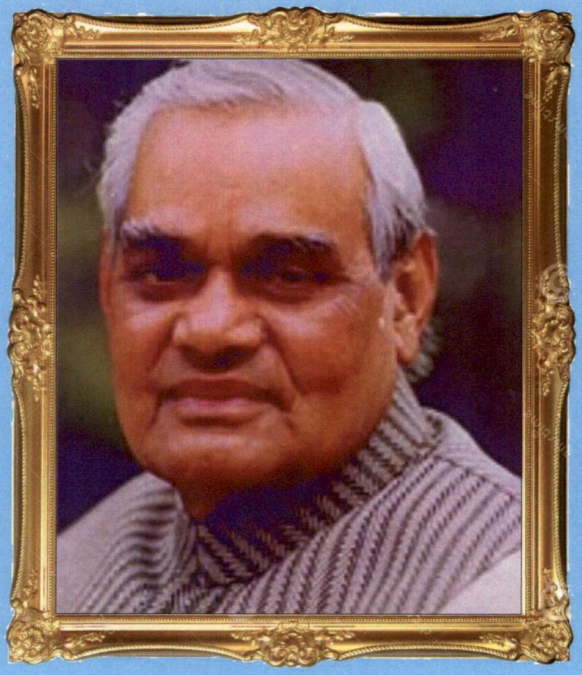

अटल बिहारी वाजपेयी

जन्म- 25 दिसम्बर1924 निधन- 16 अगस्त 2018

न मैं चुप हूँ, न गाता हूँ।
सवेरा है मगर पूरब दिशा में
घिर रहे बादल
रुई से धुंधलके में।
मील के पत्थर पड़े घायल,
ठिठके पाँव,
ओझल गाँव,
जड़ता है न गतिमयता
स्वयं को दूसरों की दृष्टि से–
मैं देख पाता हूँ,
न मैं चुप हूँ, न गाता हूँ